कर्मग्रन्थिकों और सैद्धान्तिकों का मतभेद

सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि दस जीवस्थानों में तीन उपयोगों का कथन कार्म-ग्रन्थिक मत का फलित है। सैद्धान्तिक मत के अनुसार तो छह जीवस्थानों में ही तीन उपयोग फलित होते हैं और द्वीन्द्रिय आदि शेष चार जीवस्थानों में पाँच उपयोग फलित होते हैं। पृ०—२२, नोट।

अवधिदर्शन में गुणस्थानों की संख्या के संबन्ध में कार्मग्रन्थिकों तथा सैद्धान्तिकों का मत-भेद है। कार्मग्रन्थिक उसमें नौ तथा दस गुणस्थान मानते हैं और सैद्धान्तिक उसमें बारह गुणस्थान मानते हैं। पृ०–१४६।

सैद्धान्तिक दूसरे गुणस्थान में ज्ञान मानते हैं, पर कार्मग्रन्थिक उसमें अज्ञान मानते हैं। पृ०—१६६, नोट।

वैक्रिय तथा आहारक-शरीर बनाते और त्यागते समय कौन-सा योग मानना चाहिए, इस विषय में कार्मग्रंथिकों का और सैद्धान्तिकों का मत-भेद है। पृ०–१७०, नोट।

ग्रंथिभेद के अनन्तर कौन-सा सम्यक्त्व होता है, इस विषय में सिद्धान्त तथा कर्मग्रंथ का मत-भेद है। पृ०–१७१। [चौथा कर्मग्रन्थ

चौथा कर्मग्रन्थ तथा पञ्चसंग्रह

जीवस्थानों में योग का विचार पञ्चसंग्रह में भी है। पृ०–१५, नोट।

अपर्याप्त जीवस्थान के योगों के संबन्ध का मत-भेद जो इस कर्म-ग्रंथ में है, वह पञ्चसंग्रह की टीका में विस्तारपूर्वक है। पृ०–१६।

जीवस्थानों में उपयोगों का विचार पञ्चसंग्रह में भी है। पृ०—२०, नोट।

कर्मग्रन्थकार ने विभङ्गज्ञान में दो जीवस्थानों का और पञ्चसंग्रहकार ने एक जीवस्थान का उल्लेख किया है। पृ०–६८, नोट।

अपर्याप्त-अवस्था में औपशमिकसम्यक्त्व पाया जा सकता है, यह बात पञ्चसंग्रह में भी है। पृ०–७० नोट।

पुरुषों से स्त्रियों की संख्या अधिक होने का वर्णन पञ्चसंग्रह में है। पृ०–१२५, नोट।

पञ्चसंग्रह में भी गुणस्थानों को लेकर योगों का विचार है। पृ०–१६३, नोट।

गुणस्थान में उपयोग का वर्णन पञ्चसंग्रह में है। पृ०–१६७, नोट।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बन्ध-हेतुओं के उत्तर भेद तथा गुणस्थानों में मूल बन्ध-हेतुओं का विचार पञ्चसंग्रह में है। पृ०—१७५, नोट।

सामान्य तथा विशेष बन्ध-हेतुओं का वर्णन पञ्चसंग्रह में विस्तृत है। पृ०—१८१, नोट।

गुणस्थानों में बन्ध, उदय आदि का विचार पञ्चसंग्रह में है। पृ०—१८७, नोट।

गुणस्थानों में अल्प-बहुत्व का विचार पञ्चसंग्रह में है। पृ०—१६२, नोट।

कर्म के भाव पञ्चसंग्रह में हैं। पृ०—२०४, नोट।

उत्तर प्रकृतियों के मूल बन्ध-हेतु का विचार कर्मग्रन्थ और पञ्चसंग्रह में भिन्न-भिन्न शैली का है। पृ०—२२७।

एक जीवाश्रित भावों की संख्या मूल कर्मग्रन्थ तथा मूल पञ्चसंग्रह में भिन्न नहीं है, किन्तु दोनों की व्याख्याओं में देखने योग्य थोड़ा सा विचार-भेद है। पृ०—२२६। [चौथा कर्मग्रन्थ

चौथे कर्मग्रन्थ के कुछ विशेष स्थल

जीवस्थान, मार्गणास्थान और गुणस्थान का पारस्परिक अन्तर। पृ०—५।

परभव की आयु बाँधने का समय-विभाग अधिकारी-भेद के अनुसार किस-किस प्रकार का है? इसका खुलासा। पृ०—२५, नोट।

उदीरणा किस प्रकार के कर्म की होती है और वह कब तक हो सकती है? इस विषय का नियम। पृ०—२६, नोट।

द्रव्य-लेश्या के स्वरूप के संबन्ध में कितने पक्ष हैं? उन सबका आशय क्या है? भावलेश्या क्या वस्तु है और महाभारत में, योगदर्शन में तथा गोशालक के मत में लेश्या के स्थान में कैसी कल्पना है? इत्यादि का विचार। पृ०—३३।

शास्त्र में एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि जो इन्द्रिय-सापेक्ष प्राणियों का विभाग है वह किस अपेक्षा से? तथा इन्द्रिय के कितने भेद-प्रभेद हैं और उनका क्या स्वरूप है? इत्यादि का विचार। पृ०—३६।

संज्ञा का तथा उसके भेद-प्रभेदों का स्वरूप और संज्ञित्व तथा असंज्ञित्व के व्यवहार का नियामक क्या है? इत्यादि पर विचार। पृ०—३८।

अपर्याप्त तथा पर्याप्त और उसके भेद आदि का स्वरूप तथा पर्याप्ति का स्वरूप। पृ०—४०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केवलज्ञान तथा केवलदर्शन के क्रमभावित्व, सहभावित्व और अभेद, इन तीन पक्षों की मुख्य-मुख्य दलीलें तथा उक्त तीन पक्ष किस-किस नय की अपेक्षा से हैं ? इत्यादि का वर्णन। पृ०—४३।

बोलने तथा सुनने की शक्ति न होने पर भी एकेन्द्रिय में श्रुत-उपयोग स्वीकार किया जाता है, सो किस तरह ? इस पर विचार। पृ०—४५।

पुरुष व्यक्ति में स्त्री-योग्य और स्त्री व्यक्ति में पुरुष-योग्य भाव पाए जाते हैं और कभी तो किसी एक ही व्यक्ति में स्त्री-पुरुष दोनों के बाह्याभ्यन्तर लक्षण होते हैं। इसके विश्वस्त सबूत। पृ०—५३, नोट।

श्रावकों की दया जो सवा विश्वा कही जाती है, उसका खुलासा। पृ०—६१, नोट।

मनःपर्याय-उपयोग को कोई आचार्य दर्शनरूप भी मानते हैं, इसका प्रमाण। पृ०—६२, नोट।

जातिभव्य किसको कहते हैं ? इसका खुलासा। पृ०—६५, नोट।

औपशमिकसम्यक्त्व में दो जीवस्थान माननेवाले और एक जीवस्थान माननेवाले आचार्य अपने-अपने पक्ष की पुष्टि के लिए अपर्याप्त-अवस्था में औपशमिक सम्यक्त्व पाए जाने और न पाए जाने के विषय में क्या क्या युक्ति देते हैं ? इसका सविस्तर वर्णन। पृ०—७०, नोट।

संमूर्छिम मनुष्यों की उत्पत्ति के क्षेत्र और स्थान तथा उनकी आयु और योग्यता जानने के लिए आगमिक-प्रमाण। पृ०—७२, नोट।

स्वर्ग से च्युत होकर देव किन स्थानों में पैदा होते हैं ? इसका कथन। पृ०—७३, नोट।

चक्षुर्दर्शन में कोई तीन ही जीवस्थान मानते हैं और कोई छह। यह मत-भेद इन्द्रियपर्याप्ति की भिन्न-भिन्न व्याख्याओं पर निर्भर है। इसका सप्रमाण कथन। पृ०—७६, नोट।

कर्मग्रन्थ में असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय के स्त्री और पुरुष, ये दो भेद माने हैं और सिद्धान्त में एक नपुंसक, सो किस अपेक्षा से ? इसका प्रमाण। पृ०—८८, नोट।

अज्ञान-त्रिक में दो गुणस्थान माननेवालों का तथा तीन गुणस्थान माननेवालों का आशय क्या है ? इसका खुलासा। पृ०—८२।

कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याओं में छह गुणस्थान इस कर्मग्रन्थ में माने हुए हैं और पञ्चसंग्रह आदि ग्रन्थों में उक्त तीन लेश्याओं में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार गुणस्थान माने हैं। सो किस अपेक्षा से? इसका प्रमाण पूर्वक खुलासा। पृ०—८८।

जब मरण के समय ग्यारह गुणस्थान पाए जाने का कथन है, तब विग्रह-गति में तीन ही गुणस्थान कैसे माने गए? इसका खुलासा। पृ०—८६।

स्त्रीवेद में तेरह योगों का तथा वेद सामान्य में बारह उपयोगों का और नौ गुणस्थानों का जो कथन है, सो द्रव्य और भावों में से किस-किस प्रकार के वेद को लेने से घट सकता है? इसका खुलासा। पृ०—६७, नोट।

उपशमसम्यक्त्व के योगों में औदारिकमिश्रयोग का परिगणन है, सो किस तरह सम्भव है? इसका खुलासा। पृ०—६८।

मार्गणाओं में जो अल्पबहुत्व का विचार कर्मग्रन्थ में है, वह आगम आदि किन प्राचीन ग्रन्थों में है? इसकी सूचना। पृ०—११५, नोट।

काल की अपेक्षा क्षेत्र की सूक्ष्मता का सप्रमाण कथन। पृ०—१७७ नोट।

शुक्ल, पद्म और तेजो-लेश्यावालों के संख्यातगुण अल्प-बहुत्व पर शङ्का-समाधान तथा उस विषय में टबाकार का मन्तव्य। पृ०—१३०, नोट।

तीन योगों का स्वरूप तथा उनके बाह्य-आभ्यन्तर कारणों का स्पष्ट कथन और योगों की संख्या के विषय में शङ्का-समाधान तथा द्रव्यमन, द्रव्यवचन और शरीर का स्वरूप। पृ०—१३४,।

सम्यक्त्व सहेतुक है या निर्हेतुक? क्षायोपशमिक आदि भेदों का आधार, औपशमिक और क्षायोपशमिक-सम्यक्त्व का आपस में अन्तर, क्षायिक सम्यक्त्व की उन दोनों से विशेषता, कुछ शङ्का-समाधान, विपाकोदय और प्रदेशोदय का स्वरूप, क्षयोपशम तथा उपशम-शब्द की व्याख्या, एवं अन्य प्रासङ्गिक विचार। पृ०—१३६।

अपर्याप्त-अवस्था में इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण होने के पहिले चक्षुर्दर्शन नहीं माने जाने और चक्षुर्दर्शन माने जाने पर प्रमाण पूर्वक विचार। पृ०—१४१।

वक्रगति के संबन्ध में तीन बातों पर सविस्तर विचार—(१) वक्रगति के विग्रहों की संख्या, (२) वक्रगति का काल-मान और (३) वक्रगति में अनाहारकत्व का काल-मान। पृ०—१४३।

अवधि दर्शन में गुणस्थानों की संख्या के विषय में पक्ष-भेद तथा प्रत्येक पक्ष का तात्पर्य अर्थात् विभङ्ग ज्ञान से अवधिदर्शन का भेदाभेद। पृ०-१४६।

श्वेताम्बर-दिगम्बर संप्रदाय में कवलाहार-विषयक मत-भेद का समन्वय। पृ०—१४८।

केवल ज्ञान प्राप्त कर सकने वाली स्त्रीजाति के लिए श्रुतज्ञान विशेष का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् दृष्टिवाद के अध्ययन का निषेध करना, यह एक प्रकार से विरोध है। इस संबन्ध में विचार तथा नय-दृष्टि से विरोध का परिहार। पृ०—१४६।

चक्षुर्दर्शन के योगों में से औदारिक मिश्र योग का वर्जन किया है, सो किस तरह सम्भव है? इस विषय पर विचार। पृ०—१५४।

केवलिसमुद्घात संबन्धी अनेक विषयों का वर्णन, उपनिषदों में तथा गीता में जो आत्मा की व्यापकता का वर्णन है, उसका जैन-दृष्टि से मिलान और केवलिसमुद्घात-जैसी क्रिया का वर्णन अन्य किस दर्शन में है? इसकी सूचना। पृ०—१५५।

जैनदर्शन में तथा जैनेतर-दर्शन में काल का स्वरूप किस-किस प्रकार का माना है? तथा उसका वास्तविक स्वरूप कैसा मानना चाहिए? इसका प्रमाण-पूर्वक विचार। पृ०—१५७।

छह लेश्या का संबन्ध चार गुणस्थान तक मानना चाहिए या छह गुण-स्थान तक? इस संबन्ध में जो पक्ष हैं, उनका आशय तथा शुभ भावलेश्या के समय अशुभ द्रव्य लेश्या और अशुभ द्रव्य लेश्या के समय शुभ भावलेश्या, इस प्रकार लेश्याओं की विषमता किन जीवों में होती है? इत्यादि विचार। पृ०—१०२, नोट।

कर्मबन्ध के हेतुओं की भिन्न-भिन्न संख्या तथा उसके संबन्ध में कुछ विशेष ऊहापोह। पृ०—१७४, नोट।

आभिग्रहिक अनाभिग्रहिक और आभिनिवेशिक-मिथ्यात्व का शास्त्रीय खुलासा। पृ०—१७६, नोट।

तीर्थंकरनामकर्म और आहारक-द्विक, इन तीन प्रकृतियों के बन्ध को कहीं कषाय-हेतुक कहा है और कहीं तीर्थंकरनामकर्म के बन्ध को सम्यक्त्व-हेतुक तथा आहारक द्विक के बन्ध को संयम-हेतुक, सो किस अपेक्षा से? इसका खुलासा। पृ०—१८१, नोट।

छह भाव और उनके भेदों का वर्णन अन्यत्र कहाँ-कहाँ मिलता है? इसकी सूचना। पृ०—१९६, नोट।

मति आदि अज्ञानों को कहीं क्षायोपशमिक और कहीं औदयिक कहा है, सो किस अपेक्षा से? इसका खुलासा। पृ० १९९, नोट।

संख्या का विचार अन्य कहाँ-कहाँ और किस-किस प्रकार है? इसका निर्देश। पृ०—२०८, नोट।

युगपद् तथा भिन्न-भिन्न समय में एक या अनेक जीवाश्रित पाए जाने-वाले भाव और अनेक जीवों की अपेक्षा से गुणस्थानों में भावों के उत्तर भेद। पृ०—२३१।

[चौथा कर्मग्रन्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org